

लवण ग्रस्त क्षेत्रों में गेहूँ उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीकियाँ

मोती लाल मीणा, धीरज सिंह एवं एम.के. चौधरी

भाकृअनुप—काजरी, कृषि विज्ञान केन्द्र, पाली—मारवाड़ (राजस्थान)—306401

खाद्यान्नों की लगातार बढ़ती मांग तथा कृषि भूमि की सीमित उत्पादन क्षमता को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि लवण प्रभावित अनुपजाऊ एवं समस्याग्रस्त भूमियों को सुधार कर फसलों के अंतर्गत लाया जाये। भारत में मुख्यतः राजस्थान, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, गुजरात, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, हरियाणा, पश्चिम बंगाल आदि राज्यों में लगभग 67.5 लाख हैक्टर से भी अधिक भूमि लवणग्रस्त हैं। इस लवण प्रभावित भूमि का लगभग 57.3 प्रतिशत भाग क्षारीय एवं 45.6 प्रतिशत भाग लवणीय हैं।

फसलों की उचित बढ़वार के लिये मृदाओं में कुछ न कुछ लवणीय तत्वों का होना आवश्यक है लेकिन यदि किसी कारणवश इनल लवणों की मात्रा एक विशेष मान से अधिक हो जाती है तो उसका फसलों की बढ़वार एवं उत्पादन क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यह भूमि सामान्यतः दो प्रकार की होती है— क्षारीय भूमि, जिसे ऊसर कहते हैं और लवणीय भूमि जिसे सेम व खारच कहते हैं।

लवणीय मृदा:—

ऐसी मृदायें जिनमें निष्क्रिय (उदासीन) घुलनशील लवणों की अधिक मात्रा के कारण बीज का अंकुरण एवं पौधों का विकास प्रभावित होता है, वह लवणीय मृदाएं कहलाती हैं। इन मृदाओं के संतृप्त घोल की वैद्युत चालकता 4 डेसी सीमन प्रति मीटर से अधिक, मृदा का पी. एच.मान 8.2 से कम तथा विनियम योग्य सोडियम की मात्रा 15 प्रतिशत से कम होती हैं। लवणीय भूमि में सोडियम, कैल्शियम तथा मैग्नीशियम एवं उनके क्लोराइड एवं सल्फेट अधिक मात्रा में पाए जाते हैं जो आसानी से पानी में घुल जाते हैं। गर्मियों में तापमान बढ़ने पर वाष्पीकरण दर बढ़ने से घुलनशील लवण मृदा सतह की ओर आ जाते हैं। पानी तो वाष्प बनकर आसमान में उड़ जाता है और भूमि की ऊपरी सतह पर सफेद रंग की लवण पपड़ी

बन जाती है। इसी कारण से ऐसी मृदाओं को कभी-कभी सफेद कल्लर भी कहा जाता है। इन मृदाओं में नमी तो बनी रहती है परन्तु अधिक परासरणीय दाब के कारण पौधों को आवश्यकतानुसार जल की उपलब्धता नहीं हो पाती है, जिसके कारण उनकी बढ़वार एवं उत्पादन क्षमता पर विपरीत असर पड़ता है।

क्षारीय मृदा:-

वह मृदाएं जिनमें संतृप्त घोल की वैद्युत चालकता 4 डेसी सीमन प्रति मीटर से कम, मृदा का पी.एच. मान 8.2 से ज्यादा तथा विनियम योग्य सोडियम की मात्रा 15 प्रतिशत से ज्यादा होती है, क्षारीय मृदाएं कहलाती हैं। इस प्रकार की भूमि में सोडियम एवं कार्बोनेट और बाईकार्बोनेट लवणों की अपेक्षाकृत अधिकता होती है। विनियम योग्य सोडियम की मात्रा अधिक होने के कारण इन मृदाओं की भौतिक संरचना खराब हो जाती है, परिणामस्वरूप पानी सोखने की क्षमता एवं उसकी उपलब्धता काफी कम हो जाती है। वर्षा का पानी बहुत दिनों तक खेतों में खड़ा रहता है और यह गंदला दिखाई पड़ता है। पौधों के जड़ क्षेत्र में हवा का आवागमन सही ढंग से नहीं हो पाता है। इसके कारण जड़ों की श्वसन क्रिया एवं विकास कम हो जाता है और पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की भी कमी हो जाती है। ऐसी परिस्थितियों में पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की भी कमी हो जाती है। जिससे पौधों की बढ़वार, फसल की वृद्धि एवं उत्पादन क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। क्षारीय मृदाओं में पी.एच. मान अधिक होने के कारण उनमें विद्यमान जैविक तत्व घुल जाते हैं और वाष्पन द्वारा मृदा सतह पर जमा हो जाते हैं। इसके कारण भूमि की सतह गहरे भूरे रंग की हो जाती है। सूखने पर भूमि की ऊपरी सतह पर दरारें पड़ जाती हैं। इन जमीनों को खोदने पर लगभग 1.0-1.5 मीटर के आस-पास में कंकड़ की मोटी परत पाई जाती है। ऐसी परिस्थिति में लवणग्रस्त एवं अनुपजाऊ भूमिष्ठों को सुधारकर कृषि योग्य बनाने और फसलोत्पादन के लिए उपयोग करने से गेहूँ की सकल पैदावार बढ़ाने के आसार परिलक्षित होते हैं। कृषि योग्य क्षेत्र को एक सीमा से आगे बढ़ाना सम्भव नहीं है अतः प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक उपज लेना अधिक सार्थक विकल्प हो सकता है। ऐसे में उचित प्रसार तरीकों से नवीनतम कृषि तकनीकों को किसानों तक पहुँचाकर संभावित उपज अन्तर को कम किया जा सकता है। लवण प्रभावित भूमियों में

समुचित गेहूँ उत्पादन प्राप्त करने के लिये उन्नत कृषि प्रौद्योगिकियों जैसे प्रजाति चुनाव, सिंचाई, खरपतवार नियंत्रण इत्यादि द्वारा संबंधित प्रभावी सस्य क्रियाओं का विवरण निम्नांकित हैं।

भूमि व खेत की तैयारी:-

वैसे तो गेहूँ की खेती कई प्रकार की भूमियों में की जा सकती है लेकिन अच्छे जल निकास वाली मध्यम गठन की दोमट मिट्टी सर्वोत्तम रहती हैं। गेहूँ में दूसरी फसलो की तुलना में अपेक्षाकृत मध्यम लवण सहनशील क्षमता होने के कारण इसकी खेती लवणीय, कल्लर और सेम वाली भूमि में भी की जा सकती हैं। यद्यपि अत्यधिक लवणीय एवं क्षारीय मिट्टी इसकी खेती के लिये उपयुक्त नहीं है तथा इसका पैदावार पर विपरीत असर पड़ता है, तथापि निम्न क्षारीय स्तर की भूमि में उपयुक्त किस्म का चुनाव कर गेहूँ की सफल खेती की जा सकती हैं। जहाँ भूमि लवणीय हो वहाँ खेत में पानी भरकर घुलनशील लवणों को पौधों के जड़ क्षेत्र से निक्षालित किया जा सकता है। यदि पानी के निकास का प्रबंधन न हो सके तो प्रत्येक वर्ष ढँचा को हरी खाद के रूप में उगाना चाहिये। क्षारीय भूमि में मई-जून के महीने में आवश्यक मात्रा में जिप्सम मिला देनी चाहिये। जिप्सम की आवश्यक मात्रा का आंकलन मृदा के पी.एच. मान के अनुसार भिन्न हो सकता है। मृदा परिक्षण के बाद पी.एच. मान के हिसाब से ही जिप्सम की मात्रा का उपयोग करना चाहिये ताकि जमीन की भौतिक संरचना में सुधार आ जाये और गेहूँ का सामान्य उत्पादन लिया जा सके।

सारणी 1 क्षारीय मृदा के पी.एच.मान के हिसाब से आवश्यकतानुसार जिप्सम की मात्रा

मृदा का पी.एच. मान	जिप्सम की मात्रा (कट्टे/है.)	
	भारी मिट्टी	दोमट मिट्टी
8.5	0	0
8.6	18	9
8.7	36	16
8.8	55	30
8.9	80	45
9.0	50	60
9.1	120	78

9.2	70	46
9.3	78	53
9.4	85	60
9.5	89	69
9.6	92	76
9.7	105	84
9.8	111	91
9.9	116	99
10.0	120	106
10.1	124	114

जिप्सम के एक कट्टे का वजन 50 कि.ग्रा. होता है।

लवण प्रभावित भूमि में खेत की तैयारी पारम्परिक तरिके से ही करनी चाहिए लेकिन जल पलावन की समस्या से ग्रस्त भूमियों में मेड़ बनाकर खेती करना अधिक लाभदायक रहता है। गेहूँ की अच्छी पैदावार लेने के लिये खेत में उचित नमी की मात्रा तथा मिट्टी का भुरभुरा होना बहुत जरूरी है। इसके लिये सिंचित क्षेत्रों में पहली जुताई मिट्टी पलट हल से तथा बाद की दो-तीन जुताई तवेदार हैरो या देशी हल से करनी चाहिए। अन्तिम जुताई के बाद भूमि में नमी संरक्षित करने तथा समतल परत बनाने के लिये दो बार सुहागा अवश्य लगाएं। बारानी क्षेत्रों में प्रत्येक बरसात के बाद हैरो/हल से जुताई कर नमी को संरक्षित करना चाहिये तथा प्रत्येक जुताई के बाद पाटा अवश्य लगायें। गर्मी के मौसम में गहरी जुताई करने से कीड़े-मकोड़े नष्ट हो जाते हैं। पानी के संरक्षण एवं एकसार उपयोग के लिये ट्रैक्टर चालित लेजर लैंड लेवलर से भूमि को समतल बनायें।

गेहूँ की लवण सहनशील प्रजातियों का चुनाव:-

गेहूँ की अच्छी पैदावार के लिये विश्वसनीय स्रोत से प्राप्त उन्नत किस्मों के बीजों को ही प्रयोग करना चाहिए। लवणग्रसित भूमियों में अच्छी पैदावार लेने के लिये सही किस्मों का चुनाव अति आवश्यक है। गेहूँ की लवण सहनशील अनुशंसित प्रजातियों का विवरण नीचे दिया गया है।

के.आर.एल. 1-4 (1990):-

के.आर.एल. 1-4, केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थानए करनाल द्वारा विकसित गेहूँ की प्रथम प्रजाति है। इस प्रजाति को केंद्रीय प्रजाति जारी समिति ने वर्ष 1990 में जारी किया था। यह प्रजाति उत्तर-पश्चिम मैदानी भागों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। इसका कद बौना है तथा पौधे की ऊँचाई 90-92 से.मी. होती है, यह 130-137 दिनों में पक जाती है। इसके दानों का आकार मध्यम एवं रंग गेहूँआ है। यह प्रजाति विभिन्न रतुआ रोगों के लिये भी प्रतिरोधी गुण रखती है इस किस्म के गेहूँ के दानों में 12 प्रतिशत प्रोटीन, हैक्टोलिटर भार 71.7 कि.ग्रा. एवं अवसादन (सेडिमेंटेशन) माप 40 मिली. है। सामान्य मृदाओं में यह किस्म 40 से 50 क्विंटल प्रति हैक्टर तक एवं लवण ग्रसित मृदाओं में 25 से 35 क्विंटल प्रति हैक्टर तक उपज देने में सक्षम है। के.आर.एल. 1-4 को खारचियां एवं डब्ल्यू.एल.-711 के संकरण के पश्चात वंशावली वरण द्वारा विकसित किया गया। यह प्रजाति 7 डे. सी./मी.तक की लवणता एवं 9.3 पी.एच. मान की ऊसरता को सहन कर सकती है। मुख्य रूप से यह प्रजाति उत्तर प्रदेश की लतण ग्रस्त मृदाओं में उगाई जाती है। इसके अतिरिक्त राजस्थान की लवण ग्रसित मृदाओं के लिये भी यह प्रजाति उपयोगी है।

के.आर.एल. 19:-

के.आर.एल.-19, केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा विकसित नवीनतम प्रजाति है। यह प्रजाति पी.डी.डब्ल्यू. 255 एवं के.आर.एल. 1-4 के संकरण द्वारा वंशावली वरण प्रक्रिया से चयनित की गई थी। इस प्रजाति को वर्ष 2000 में जारी किया गया। यह प्रजाति 9.3 पी.एच. मान तक की क्षारीयता एवं 7 डे.सी./मी. की लवणता को सहन कर सकती है। इसके अतिरिक्त यह प्रजाति उन भूमियों में भी अच्छी उपज दे सकती है जहां भूमि तो अच्छी है। परन्तु भूजल खारा (ई.सी. 15-20 डेसी/मी. अथवा आर.एस.सी. 12-14 मिली तुल्यांक/लीटर) होता है। इस किस्म के दाने गेहूँआ रंग के एवं मध्यम आकार के होते हैं। के.आर.एल. 19 में प्रोटीन की मात्रा 12 प्रतिशत, हैक्टोलीटर भार 77.4 कि.ग्रा. एवं अवसादन (सेडिमेंटेशन) माप 47.4 मिली. होता है। यह प्रजाति सामान्य मृदा में भी अच्छी उपज (45-52 क्विंटल प्रति हैक्टर) देने में सक्षम है। लवण ग्रसित मृदाओं में इसकी उपज

25 से 35 क्विंटल प्रति हैक्टर तक हो सकती हैं। यह प्रजाति मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश की लवणीय एवं क्षारीय भूमियों में उगाई जाती है।

के.आर.एल. 210 (2012):—

यह किस्म केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा 2012 में विकसित किस्म है। पौधों की ऊंचाई 99.4 से.मी.। यह किस्म पीले एवं भूरे गेरुआ, अनावृत कण्डवा, पताका कण्डवा, करनाल बन्ट बीमारी के प्रति सहनशील किस्म हैं। फसल पकने पर पौधे आड़े नहीं पड़ती एवं बालियों से दाने नहीं बिखरते। पकाव अवधि 143 दिन। किस्म की उत्पादन क्षमता 55 क्विंटल/है.। इस किस्म की उत्पादन क्षमता पीएच 9.3 तक तथा ई. सी. 6 डी.सी. तक की मिट्टी में 30—50 क्विंटल/है.।

के.आर. एल. 213 (2010):—

के.आर.एल.—213, केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा विकसित नवीनतम प्रजाति है। इस प्रजाति को वर्ष 2010 में जारी किया गया। यह प्रजाति 9.2 पी.एच. मान तक की क्षारीयता एवं 6.4 डे.सी./मी. की लवणता को सहन कर सकती है। इसके अतिरिक्त यह प्रजाति उन भूमियों में भी अच्छी उपज दे सकती है जहां भूमि तो अच्छी है परन्तु भूजल खारा (ई.सी. 15—20 डेसी/मी. अथवा आर.एस.सी. 12—14 मिली तुल्यांक/लीटर) होता है। इस किस्म के दाने गेरुआ रंग के एवं मध्यम आकार के होते हैं। के. आर.एल. 213 में प्रोटीन की मात्रा 12 प्रतिशत, हैक्टोलीटर भार 76.8 कि.ग्रा. एवं अवसादन (सेडिमेंटेशन) माप 46.4 मिली. होता है। यह प्रजाति सामान्य मृदा में भी अच्छी उपज (45—50 क्विंटल प्रति हैक्टर) देने में सक्षम हैं। लवण ग्रसत मृदाओं में इसकी उपज 28 से 38 क्विंटल प्रति हैक्टर तक हो सकती हैं। यह प्रजाति मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, हरियाण एवं मध्य प्रदेश की लवणीय एवं क्षारीय भूमियों में उगाई जाती है।

खारचिया 65:—

यह किस्म राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर द्वारा 1978 में विकसित किस्म है। पौधों की ऊंचाई 110.5 से.मी. होती हैं। यह किस्म पीले एवं भूरे गेरुआ, अनावृत कण्डवा, पताका कण्डवा, करनाल बन्ट बीमारी के प्रति सहनशील किस्म हैं। फसल पकने पर पौधे आड़े नहीं पड़ती एवं बालियों से दाने नहीं बिखरते। पकाव अवधि 149 दिन। किस्म की उत्पादन क्षमता 35 क्विंटल/है। इस किस्म की उत्पादन क्षमता पी.एच. 10.2 तक तथा ई.सी. 6 डी.सी. तक की मिट्टी में 30–40 क्विंटल प्रति हैक्टर होती हैं। इसके दानों का रंग लाल गेहूँआ होता है। दानों में ग्लोटीन ज्यादा पाया जाता है, जिससे इसके आटे की बनी चपाती खाने में अधिक स्वादिष्ट होती है। यह किस्म अधिक सुखा सहन कर सकती हैं। यह काली रोली के प्रति रोगरोधक गुण है। यह किस्म लम्बे कद, सिकुरदार बालियां सफेद तुशनीपत्र एवं लाल रंग के दानो वाली है। अधिक क्षार वाली भूमि में इसे आसानी से हर वर्ष उगाया जा सकता है तथा अधिक उपज ली जा सकती है। क्षारीय भूमि में भी इसकी औसत उपज 15–25 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है, जहां कि दूसरी किस्म से इतनी उपज लेना बिल्कुल असम्भव है।

बीज की मात्रा एवं बुवाई विधि:—

बीज की मात्रा चुनी हुई प्रजाति के दानों के आकार एवं उनके भार, बुआई के समय, मृदा नमी तथा उत्पादन परिस्थितियों पर निर्भर करती हैं। लवणग्रस्त मृदाओं में गेहूँ की अच्छी पैदावार लेने के लिये बीज की मात्रा सामान्य मृदा की अपेक्षा 25 प्रतिशत अधिक यानि 125.5 कि.ग्रा./हैक्टर रखनी चाहिए। समय पर बुआई की गई फसल में बीज की गहराई लगभग 4–5 से.मी. एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी 20 से.मी. होनी चाहिए। देर से बोई गयी फसल में कतार से कतार की दूरी कम करके 18 से.मी. रखनी चाहिए। फसल के समान व अच्छे अंकुरण तथा बीज व खाद का बेहतर स्थानन सुनिश्चित करने के लिये बुआई सीड-कम-फर्टिलाइजर से ही करनी चाहिए। बीज के शीघ्र अंकुरण के लिये मिट्टी की ऊपरी सतह में पर्याप्त नमी का होना जरूरी है। यदि यह उपलब्ध न हो तो गेहूँ की बुआई देसी हल के पीछे लगे चोंगे में बीज डालकर भी की जा सकती हैं। कई बार यह देखा गया है कि

किसान गेहूँ की बुआई छिंटकवा विधि से करते हैं जिसके कारण फसल का जमाव अपेक्षाकृत कम या ज्यादा हो जाता है। ऐसी स्थिति में बीज की मात्रा 25 प्रतिशत अधिक रखनी चाहिए। गेहूँ की फसल को जुताई किये बगैर जीरो-टिल-ड्रील मशीन से भी बोया जा सकता है। इस विधि से गेहूँ की बुआई अन्य विधियों की अपेक्षा लगभग 10 दिन पहले की जा सकती है और खेत की तैयारी में लगने वाले संसाधनों जैसे- समय, श्रम, डीजल एवं पानी की भी बचत होती है। इस तकनीक के सफल अंगीकरण से पारम्परिक विधि के समानान्तर पैदावार प्राप्त होती है। इसके साथ-साथ फसल में आने वाले खरपतवारों (बथुआ, खरबथुआ, मुरेल, गेहूँसा), कीड़े-मकोड़ों (दीमक) तथा बीमारियों (करनाल बंट, पाउडरी मिल्ड्यू) इत्यादि का प्रकोप भी कम होता है। शून्य जुताई तकनीक से गेहूँ की बुआई करने पर किसान लगभग 2400-2800 रु./हैक्टर की बचत कर सकते हैं।

बीजोपचार:-

अधितर किसान अपने ही खेत से उत्पन्न अथवा अन्य किसानों से लिया हुआ बीज ही प्रयोग करते हैं ऐसी परिस्थितियों में बीज एवं मृदाजनित रोगों के बचाव हेतु बीज को उपचारित करना अति आवश्यक है। शोध प्रक्षेत्रों एवं खेतों में हुए तजुर्बो के आधार पर पाया गया है कि एक टीका एजोटोबैक्टर (एजोटीका) जीवाणु कल्चर और एक टीका फॉस्फोरस सोलुबिलाइजिंग बैक्टीरिया कल्चर प्रति 10 कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित कर बोने से पहले फसल का जमाव व फुटाव अपेक्षाकृत शीघ्र एवं अधिक होता है तथा इससे नत्रजनीय एवं फास्फोरस युक्त उर्वरकों की भी बचत होती है। लवणीय मिट्टी एवं खारे पानी वाले क्षेत्रों में बीज को सोडियम सल्फेट के 3 प्रतिशत घोल (1.5 कि.ग्रा. सोडियम सल्फेट/50 लीटर पानी) में 24 घंटे डुबोना चाहिए। इसके बाद बीज से लवण की परत हटाने के लिये सादे पानी में अच्छी तरह धोकर सुखा लेना चाहिए।

खुली कंगयारी (लूज स्मट) रोग के नियंत्रण हेतु कार्बोक्सिन (वीटावैक्स 75 डब्ल्यू.पी.) या कारबैन्डाजिम (बाविस्टिन 50 डब्ल्यू.पी.) 2.5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से या टेबुकोनाजोल 1 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से सूखा बीजोपचार अवश्य करना चाहिए। दीमक के प्रकोप से

बचाव के लिये क्लोरपाइरिफोस 4.5 मि.ली./कि.ग्रा. बीज की दर से आवश्यकतानुसार पानी में घोल बनाकर समान रूप से छिड़काव कर बीजोपचार करना चाहिए।

बुआई का समय:—

बुआई का समय मुख्यतः मृदा नमी की मात्रा एवं तापमान पर निर्भर करता है। अच्छी पैदावार के लिए गेहूँ की बुआई सही समय पर ही करनी चाहिए। उपयुक्त नमी की उपलब्धता के आधार पर सिंचित क्षेत्रों में नवम्बर का पहला पखवाड़ा (1–15 नवम्बर) बुआई का उचित समय है। अनुभवों के आधार पर पाया गया है कि अच्छे अंकुरण के लिये गेहूँ में बुआई के समय दिन का अधिकतम तापमान सामान्यता 22–23 डिग्री सेल्सियस से अधिक नहीं होना चाहिये। अधिक तापमान पर गेहूँ की बुआई करने से अंकुरण मृत्युदर अधिक तथा फसल में फुटाव अपेक्षाकृत कम हो जाता है। वृद्धि एवं विकास की दृष्टि से अच्छे फुआव के लिये औसतन 16–20 डिग्री सेल्सियस तापमान सर्वाधिक उपयुक्त होता है। बाली/दानों के बनते समय यदि तापमान में एकदम वृद्धि हो जाये तो इससे फसल में समय पूर्व परिपक्वता आ जाती हैंए दाना छोटा रह जाता है और उपज कम प्राप्त होती हैं। समय पर बुआई करने से फसल में दाना भी अच्छा बनता है तथा कीट एवं रोगों से फसल पर आक्रमण भी कम होता हैं। बुआई के बाद यह सुनिश्चित कर ले कि मृदा के ऊपर कोई पपड़ी न जमे।

खाद का प्रबन्धन:—

भूमि की उपजाऊ शक्ति इसमें उपलब्ध उर्वरकों की मात्रा पर निर्भर करजी है तथा उर्वरकों के संतुलित उपयोग के लिये नियमित भूमि परीक्षण अतिआवश्यक हैं। अगर संभव हो सके तो फसल में खाद का उपयोग हमेशा मिट्टी परीक्षण के आधार पर ही करें। अच्छी प्रकार से सड़ी हुई 10–12 टन गोबर की खाद प्रति हैक्टर की दर से बुआई के एक महीने पहले 3 साल में कम से कम एक बार अवश्य डालनी चाहिए। लवण प्रभावित क्षेत्रों में, क्षारीय भूमि सुधार हेतु मृदा परीक्षण के आधार पर ग्रीष्म ऋतु में जिप्सम का प्रयोग करना चाहिए। खरीफ में हरी खाद के लिए ढैंचा की बुआई कर उचित अवस्था व समय पर मिट्टी में मिला देना चाहिए। औसतन उपजाऊ भूमि में गेहूँ की अच्छी पैदावार लेने के लिए 120:60:60 कि.ग्रा.

नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटैश/हैक्टर के हिसाब से डालनी चाहिए। इसके लिये 100 कि.ग्रा. डी. ए.पी., 120 कि.ग्रा. यूरिया तथा 50 कि.ग्रा. एम.ओ.पी. उर्वरकों की आवश्यकता पड़ती हैं। सिंचित क्षेत्रों में नत्रजनीय उर्वरकों की एक तिहाई मात्रा बुवाई के समय, एक तिहाई मात्रा पहली सिंचाई (बुआई के 20–25 दिन बाद) तथा बची हुई एक तिहाई मात्रा दूसरी सिंचाई (बुआई के 40–50 दिन बाद) के बाद डालनी चाहिए। फॉस्फोरस एवं पोटैश उर्वरकों की पूरी मात्रा बुआई के समय ही डालना चाहिए। मिट्टी परिक्षण के आधार पर यदि खेत में जस्ते की कमी पाई जाती है तो 20 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट/हैक्टर की दर से बुवाई के समय डालनी चाहिए।

सिंचाई प्रबन्धन:—

आमतौर पर गेहूँ की फसल में 3–6 सिंचाईयों की आवश्यकता होती है। लवणग्रस्त मृदाओं में अच्छी पैदावार, दानों की एकरूपता एवं गुणवत्ता को सुनिश्चित करने हेतु चंदेरी जड़े निकलने (क्राउन रूट इनिशियेशन) एवं बाल आने (हैडिंग), इन दोनों अवस्थाओं में सिंचाई करना अत्यंत आवश्यक है। अन्य अवस्थाओं की अपेक्षा इस समय सिंचाई न करने से पैदावार में अपेक्षाकृत काफी गीम आ जाती है। दाने बनने के समय भी फसल में पानी की कमी न होनी चाहिए। अगर मार्च महीने की शुरुआत में तापमान सामान्य से बढ़ने लगे तो हल्की सिंचाई देना लाभदायक रहता है। जहाँ पर भूमिगत जल स्तर काफी उथला हो, पलेवा करने के बाद 1–2 सिंचाईयाँ ही देनी चाहिए। पहला पानी बुआई के 21 दिन बाद व दूसरा पानी बुआई के 85 दिन बाद लगाना चाहिए। पछेती बुआई में पहली सिंचाई 25–30 दिन बाद करें। सीमित मात्रा में पानी उपलब्ध होने पर फसल की क्रान्तिक अवस्थाओं को ध्यान में रखते हुये सिंचाई करनी चाहिए।

सारणी 2 पानी की उपलब्धता के आधारपर गेहूँ में अनुशंसित सिंचाई व्यवस्था

क्र. सं.	पानी उपलब्धता के आधार पर	गेहूँ में क्रान्तिक अवस्था व सिंचाई का समय
1	अगर एक पानी लगाना हो	चंदेरी जड़े निकलने पर

2	अगर दो पानी लगाना हो	चंदेरी जड़े निकलने एवं बाली आने पर
3	अगर तीन पानी लगाना हो	चंदेरी जड़े निकलने, गाँठ बनने व दूधिया दाना बनने पर
4	अगर चार पानी लगाना हो	चंदेरी जड़े निकलने, कल्ले फूटने, बाल आने तथा दूधिया दाना बनने पर
5	अगर पाँच पानी लगाना हो	चंदेरी जड़े निकलने, कल्ले फुटने, गाँठ बनने, बाल आने तथा दूधिया दाना बनने पर
6	अगर छः पानी लगाना हो	चंदेरी जड़े निकलने, कल्ले फुटने, गाँठ बनने, बाल आने तथा दूधिया दाना बनने तथा ठोस दाना बनने पर

गेहूँ में पहली सिंचाई बुवाई के 20–25 दिन बाद, दूसरी सिंचाई बुवाई के 40–55 दिन बाद, तीसरी सिंचाई बुवाई के 60 से 65 दिन बाद, चौथी सिंचाई बुवाई के 80 से 85 दिन बाद, पाँचवी सिंचाई बुवाई के 105 से 110 दिन बाद तथा छठि सिंचाई बुवाई के 115 से 120 दिन बाद करनी चाहिए जिससे उत्पादन में अधिक वृद्धि होती है। यदि सिंचाई के लिये प्रयोग होने वाले पानी में क्षारीयता की मात्रा 2.5 मिली तुल्यॉक/लीटर या उससे कम है तो वह पानी सिंचाई के लिये उपयुक्त है अन्यथा उसमें विद्यमान अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट के दुष्प्रभाव को निष्क्रिय करने के लिये आवश्यकतानुसार जिप्सम का प्रयोग करना चाहिए। इसके लिये पानी में विद्यमान प्रत्येक अतिरिक्त इकाई अवशियट सोडियम कार्बोनेट को निष्क्रिय करने के लिये कृषि श्रेणी के जिप्सम (80 प्रतिशत शुद्धता) को 4.8 कि.ग्रा./एकड़ की दर से सिंचाई के लिये लगने वाले प्रति से.मी. क्षारीय पानी की मात्रा के अनुसार प्रयोग करना चाहिए।

सारणी 3 पानी की उपलब्धता एवं क्षारीयता के हिसाब से गेहूँ की फसल के लिये आवश्यक जिप्सम की मात्रा (जिप्सम की मात्रा कि.ग्रा./है.)

गेहूँ बुवाई के बाद लगने वाले पानी की संख्या	पानी की क्षारीयता (आर.एस.सी.)			
	10	8	6	4

एक पानी	440	325	210	95
दो पानी	865	640	410	175
तीन पानी	1350	950	610	260
चार पानी	1650	1250	810	340
पाँच पानी	2070	1560	1010	430
छः पानी	2500	1850	1210	520

निराई-गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रण:-

खेत में खरपतवारों की प्रजाति, तुलनात्मक घनत्व, उगने के समय एवं अवस्था को देखते हुए गेहूँ की पैदावार में 10-50 प्रतिशत की कमी आ सकती हैं। अगर हो सके तो कोर लगाने के 10-12 दिन के अन्दर कसोले या खुरपे से एक निराई-गुड़ाई अवश्य कर दें। इससे खरपतवार नियंत्रण के साथ-साथ मृदा में नमी संरक्षण भी हो जाता है। क्षारीय स्थितियों में पौधों की जड़ों में वायु संचार अपेक्षाकृत अच्छा नहीं होता है तथा जड़ों के कम गहराई तक जाने से पानी की कमी भी महसूस होती है। घास जाति के खरपतवार शुरू की अवस्था में गेहूँ के पौधे से मिलते-जुलते होने के कारण गुड़ाई द्वारा निकलने में काफी मुश्किल पैदा करते हैं। अतः इन हालातों में खरपतवार नाशक दवाओं का उपयोग कर आसानी से नियंत्रण किया जा सकता है। जल्दी बुआई एवं पंक्तियों के बीच की दूरी को कम करके भी खरपतवार कुछ हद तक नियंत्रित किये जा सकते हैं।

घास जाति के खरपतवार:- कनकी/मंडूसी, जंगली जई, पोआ घास, लोमड़/लुंबड़ घास, राई घास आदि।

चौड़ी पत्ति वाले खरपतवार:- बथुआ, खरबथुआ, जंगली पालक, मैना, मेथा, हिरपखुरी, कृष्णनील, मोरेला, गोखरू, सत्यानाशी, चटरी, मटरी, फसर कंटेली, लुसवा, मालवा, प्याजी, गजरी, लटजीरा इत्यादि।

गोहूँ की फसल में केवल कनकी व जंगली जई की समस्या है तो क्लोडिनाफॉप, फिनोक्साप्रॉप या पीनोक्साडैन का ही इस्तेमाल करें परंतु घास व चौड़ी पत्ति वाले खरपतवार इकट्ठे हों तो टोटल, सल्फोसल्फयूरॉन या अटलांटिस का इस्तेमाल करना चाहिए। जिन खेतों में केवल चौड़ी पत्ति वाले खरपतवार हो तो वहाँ पर 2,4-डी या एलग्रिप (मैटसल्फयूरॉन) का प्रयोग करने से ही खरपतवारों का नियंत्रण अच्छी प्रकार हो जाता है। जंगली पालक, बथुआ, प्याजी, मेथा, पीतपापड़ा आदि को भी नियंत्रित करती हैं। इसके साथ ही हिरनखुरी व मालवा खरपतवार के नियंत्रण के लिए 2,4-डी द्वारा नियंत्रण अधिक उपयोगी हैं।

पीला रतुआ:—

यह रोग अधिक नमी वाले क्षेत्रों में आमतौर पर ज्यादा आता है। इस रोग में पत्तियों की ऊपरी सतह पीले रंग की धारियां देखने को मिलती हैं जो धीरे-धीरे पूरी पत्तियों को पीला कर देती हैं तथा पीला पाउडर जमीन पर भी गिरा देखा जा सकता है। ऐसे खेत में जाने पर कपड़े भी पीले हो जाते हैं। प्रारंभिक अवस्था में यह रोग खेत में 10-15 पौधों पर एक गोल दायरे के रूप में शुरू होता है परन्तु बाद में खेत पूरी तरह से इस रोग से भर जाता है।

रोकथाम:—

थोड़े-थोड़े अंतराल पर खेतों का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करते रहें। विशेषकर वृक्षों के आस-पास उगाई गई फसल पर अधिक ध्यान देना चाहिए। पीले हुये रतुए के लक्षण सामान्यतः जनवरी के आखिरी सप्ताह या फरवरी माह के शुरू में दिखाई देते हैं। रोग के लक्षण दिखाई देने पर इसकी रोकथाम के लिये प्रोपीकोनाजोल (टिल्ट 25 ई.सी.) या टैबूकोनाजोल या ट्राईमिडिफोन दवा का 1.0 प्रतिशत के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए। इसके लिए 200 मि.ली. दवा 200 लीटर पानी में घोलकर एक एकड़ क्षेत्र में छिड़काव करना चाहिए। रोग के प्रकोप तथा फैलाव को देखते हुए दूसरा छिड़काव 15-20 दिन के अंतराल पर करना चाहिए।

करनाल बंट:-

यह रोग अधिक नमी वाले क्षेत्रों में आमतौर पर अधिक आता है। गिनी-चुनी बालियों में व कुछ दानों पर ही इस बीमारी का प्रकोप होता है। रोगग्रस्त दानों में काले रंग की पाउडर बन जाती है। संक्रमित दानों को दबाने पर काले रंग का पाउडर बाहर आ जाता है, इससे अजीब बदबूदार गंध आती है।

रोकथाम:-

सौर ताप उपचार:-सुबह लगभग 4 घंटे बीज को पानी में भिगोकर रख दें। इसके बाद तेज धूप में बीज को पानी से निकालकर पतली परत बनाकर पक्के फर्श या तिरपाल पर पूरी तरह सूखने तक छोड़ दें। इसके बाद बीज को किसी सूखे स्थान पर संभालकर सुरक्षित रख देना चाहिए।

दवा उपचार:-बचाव हेतु बुआई से पहले वीटावैक्स (बाविस्टिन) 2 ग्राम या टैबूकोनाजोल (रैक्सल 2 डी.एस.) 1 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से सूखा उपचार करें। रोगी पौधों की बालियाँ दिखाई देते ही सावधानीपूर्वक निकालकर नष्ट कर देना चाहिए।

चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्ड्यू):-

यह रोग नमी एवं सिंचित क्षेत्रों में अधिक आता है। रोगग्रस्त पत्तियों पर सफेद या मटमैला पाउडर सा बन जाता है। अधिक प्रकोप होने पर बालियाँ भी रोगग्रस्त हो जाती हैं।

रोकथाम:-

इस रोग के नियंत्रण हेतु प्रोपीकोनाजोल (टिल्ट 25 ई.सी.) 1.0 प्रतिशत का छिड़काव बाली निकलने (हैडिंग) के समय करना चाहिए।

टुण्डू (पीली बाली विगलन) रोग:-

ममनी रोग से ग्रसित पौधों के तने का आधार फूल जाता है। पत्तियों पर झुरियां दिखाई देती है व पत्ते टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं। ऐसे पौधों की बालियाँ स्वस्थ पौधों की अपेक्षा छोटी व मोटी हो जाती है जिनमें स्वस्थ दानों की अपेक्षा काले रंग के विकृत आकृतियां जिन्हे गेगला व ममनी कहते हैं, बन जाती हैं। इन आकृतियों में हजारों की संख्या में सूक्ष्म सूत्रकृमि होते हैं। टुण्डू रोग में पत्तों, तनों व बालियों पर पीले रंग का चिपचिपा पदार्थ दिखाई देता है।

उपचार:-

ममनी व टुण्डू रोगों से बचाव के लिए प्रमाणित प्रतिरोधी बीज का प्रयोग करना चाहिए। बीज को नमक के घोल में उपचारित कर साफ पानी में धोकर छाया में सुखाकर बुआई करना चाहिए।

मोल्या रोग:-

सूत्रकृमि पौधों की जड़ों पर आक्रमण करते हैं, जिससे पौधे छोटे रह जाते हैं व पीले पड़ जाते हैं। ऐसे पौधों में फुटाव बहुत कम होता है।

उपचार:-

मोल्या के सूत्रकृमि से बचाव हेतु फसल चक्र अपनायें। फसल चक्र में जौ, सरसों, चना, मूंग, मोठ, प्याज, मेथी व तारामिरा आदि लगाना चाहिए। गेहूँ की बुआई अगेती करें तथा एच. टी. 54 एजोटिका कल्चर से बीजोपचार करना चाहिए। गर्मी में खेत की 2-3 गहरी जुताई करनी चाहिए। अत्यधिक प्रकोप होने पर कार्बोफेथान (फ्लूराडान 3 जी दानेदार) 12-15 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से भूमि में ऊरकर बुआई करें। बुआई से पूर्व यदि उपचार नहीं किया जा सके तो शीर्ष जड़ जमने के समय पहली सिंचाई के साथ यह रसायन अवश्य देना चाहिए।

कटाई-गहाई:-

फसल की कटाई पूरी तरह पकने पर ही करनी चाहिए। कटाई सुबह के समय ही करें क्योंकि अधिक सूखने पर दाने बिखरने का खतरा बना रहता है। इसके लिए जब दानों में

औसत आर्द्रता अंश लगभग 20 प्रतिशत रह जाए, तब फसल हाथ से कटाई के लिये उपयुक्त मानी जाती है। हाथ से काटी गई फसल की गहराई के लिये ट्रेक्टर चालित गहाई मशीन "थ्रैसर" का प्रयोग करें क्योंकि इसमें बीज और भूसा दोनों अलग-अलग निकलते हैं। आमतौर पर गेहूँ में अनाज एवं तूड़ा (गेहूँ की भूसा) का अनुपात लगभग 40:60 का होता है। शीघ्र कटाई-गहाई के लिये कम्बाईन हार्वेस्टर का भी प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु इसके लिये दानों में नमी की मात्रा 14 प्रतिशत से कम होनी चाहिए।

भण्डारण:-

भण्डारण के दौरान संभावित हानि को रोकने के लिये ध्यान रहे कि गेहूँ के दानों में नमी की मात्रा 10 प्रतिशत से अधिक न हो। इसके लिये अनाज को पक्के आंगन या तिरपाल पर फैलाकर तेज धूप में अच्छी तरह सुखा लेना चाहिए। बीज निकलने के बाद उनको साफ करके और सुखाकर बोरो में भर दें या भण्डारण के लिये एल्यूमिनियम के बने ढॉलों का भी प्रयोग किया जा सकता है। अनाज की कीड़ों से रक्षा के लिये एल्यूमिनियम फास्फाईड की एक टिकिया लगभग 10 क्विंटल अनाज में रखनी चाहिये।



निदेशक डी.डब्ल्यू.आर. द्वारा गेहूँ की फसल का अवलोकन



लवणग्रस्त मृदा में गेहूँ की लहलाती फसल



गेहूँ की खारचिया किस्म पर किसान गोष्ठी



गेहूँ की खारचिया किस्म के दाने